राम नाथ साव उर्फ़ राम नाथ साहू एवं अन्य।

बनाम

गोबरधन साव एवं अन्य।

27 फरवरी, 2002

[एम.बी. शाह और बी.ए. अग्रवाल, जे.जे.]

लिमिटेशन एक्ट, 1963:

धारा 5 सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908: आदेश 22 नियम 9

अभिव्यक्ति- पर्याप्त कारण'-व्याख्या को उदार निर्माण प्राप्त करना चाहिए ताकि न्याय को आगे बढ़ाया जा सके जब कोई निष्क्रियता, लापरवाही या पक्ष की ओर से प्रमाणिकता का अभाव - क्या पक्ष द्वारा दिया गया स्पष्टीकरण 'पर्याप्त कारण बनता है, यह प्रत्येक मामले के तथ्यों पर निर्भर करता है। तथ्यों पर उच्च न्यायालय द्वारा विलंब की माफी के लिए प्रार्थना की अस्वीकृति और उपशमन को अपास्त करने को उचित नहीं माना गया।

अपील की सुनवाई के दौरान, अपीलकर्ताओं में से एक ने अपने अधिवक्ता को सूचित किया कि कुछ अपीलकर्ताओं की मृत्यु हो गई है। अधिवक्ता ने उन्हें प्रतिस्थापन आवेदन दाखिल करने के लिए मृत व्यक्तियों के विधिक प्रतिनिधियों से वकालतनामा प्राप्त करने और दाखिल करने का निर्देश दिया। अपीलकर्ताओं द्वारा, जो अनपढ़ और देहाती ग्रामीण थे, उत्तराधिकारियों के प्रतिस्थापन और उपशमन को अपास्त करने के लिए आवेदन दायर किए गए थे। इन तीनों आवेदनों में क्रमश: 130 दिन, 5 साल और 3 साल की विलंब हुई। पटना उच्च न्यायालय के एकल न्यायाधीश ने विलंब को माफ करने की प्रार्थना को इस आधार पर नकार कर दिया कि कटौती को अपास्त करने के लिए आवेदन दाखिल करने में विलंब को माफ करने के लिए कोई पर्याप्त कारण नहीं दिखाया गया था। उच्च न्यायालय की खंडपीठ ने एकल न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश को बरकरार रखा।

इस न्यायालय में अपील में, अपीलकर्ताओं की ओर से तर्क दिया गया था कि।

(i)चूंकि अपीलकर्ता, जो देहाती और अशिक्षित ग्रामीण थे, अलग-अलग परिवारों से थे, अलग-अलग पुलिस स्टेशनों के अंतर्गत अलग-अलग गांवों से थे और यह दिखाने के लिए कुछ भी नहीं था कि विलंब दुर्भावनापूर्ण थी, जानबूझकर की गई थी या कोई टाल-मटोल की रणनीति अपनाई गई थी, वही किया जाना चाहिए माफ़ कर दिया गया है और उपशमन अलग रखा गया है; और (ii) परिसीमा अधिनियम, 1963 की धारा 5 और सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 22 नियम 9 के अर्थ में अभिव्यक्ति 'पर्याप्त कारण' को एक उदार निर्माण प्राप्त होना चाहिए ताकि सारवान न्याय को आगे बढ़ाती हैं जब किसी पक्ष पर कोई लापरवाही या निष्क्रियता या सम्मान की कमी नहीं होती है।

अपील की अनुमति देते हुए और उच्च न्यायालय द्वारा पारित किए गए विवादित आदेशों को अपास्त करते हुए, न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया : अभिव्यक्ति "पर्याप्त कारण" सीमा अधिनियम की धारा 5, या नागरिक प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 22 नियम 9 के अर्थ के भीतर है या किसी भी अन्य समान प्रावधान को एक उदार निर्माण प्राप्त होना चाहिए ताकि पर्याप्त न्याय को आगे बढ़ाया जा सके जब किसी विशेष मामले में कोई

लापरवाही या निष्क्रियता या प्रमाणिकता की कमी न हो, यह इस पर निर्भर करेगा कि प्रस्तुत स्पष्टीकरण "पर्याप्त कारण" होगा या नहीं प्रत्येक मामले के तथ्य। कदम उठाने में हुई विलंब के लिए दिए गए स्पष्टीकरण को स्वीकार करने या अस्वीकार करने का कोई सख्त सूत्र नहीं हो सकता है, लेकिन एक बात स्पष्ट है कि न्यायालयो को दिखाए गए कारण में गलती खोजने की प्रवृत्ति के साथ आगे नहीं बढ़ना चाहिए और याचिका को नामंजूर कर देना चाहिए निपटारा अभियान के अतिउत्साह में एक लापरवाही से किये गए आदेश द्वारा, प्रस्तुत स्पष्टीकरण को स्वीकार करना नियम होना चाहिए और अपवाद को अस्वीकार करना चाहिए, खासकर तब जब चूककर्ता पक्ष पर कोई लापरवाही या निष्क्रियता या सद्भावना की कमी का आरोप नहीं लगाया जा सकता है। दूसरी ओर, मामले पर विचार करते समय न्यायालयो को इस तथ्य को नजरअंदाज नहीं करना चाहिए कि निर्धारित समय के भीतर कदम नहीं उठाने से दूसरे पक्ष को एक मूल्यवान अधिकार प्राप्त हुआ है, जिसे नियमित तरीके से विलंब को माफ करके हल्के ढंग से पराजित नहीं किया जाना चाहिए। हालाँकि, मामले पर पांडित्यपूर्ण और उच्च तकनीकी दृष्टिकोण अपनाते हुए दिए गए स्पष्टीकरण को तब नामंजूर नहीं किया जाना चाहिए जब मामला बहुत बड़ा हो और/या मामले में तथ्य औरविधि के तर्कपूर्ण बिंदु शामिल हों, जिससे उस पक्ष को भारी नुकसान और अपूरणीय क्षति हो, जिसके खिलाफ वाद या तो व्यतिक्रम रूप से या निष्क्रियता से समाप्त हो जाता है और ऐसे पक्ष के योग्यता के आधार पर निर्णय लेने के मूल्यवान अधिकार को नष्ट कर देता है। मामले पर विचार करते समय, न्यायालयो को किसी भी तरह से पक्षों पर दिए जाने वाले आदेश के परिणामी प्रभाव के बीच संतुलन बनाना होगा। (85-ए-ई]

2. वर्तमान मामले में उच्च न्यायालय की खंड न्याय पीठ को एकल न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश को बरकरार रखना उचित नहीं था, जिसके तहत विलंब को माफ करने और कटौती को अपास्त करने की प्रार्थना को अस्वीकार कर दिया गया था।तदनुसार, उपशमन को अपास्त करने के लिए याचिका दायर करने में हुई विलंब को माफ किया जाता है, उपशमन को अपास्त किया जाता है और प्रतिस्थापन के लिए प्रार्थना स्वीकार की जाती है। परिणामस्वरूप, विधि के अनुसार गुण-दोष के आधार पर प्रथम अपील पर निर्णय लेने के लिए मामले को एकल न्यायाधीश के पास वापस भेज दिया जाता है। [85-एफ-जी]

पश्चिम बंगाल राज्य बनाम प्रशासक, हावड़ा नगर पालिका और अन्य, [1972] 1 सुप्रीम कोर्ट केस 366; सीतल प्रसाद सक्सेना (मृत) एलआरएस द्वारा बनाम भारत संघ और अन्य, ए.आई.आर. [1985] सुप्रीम कोर्ट 1; रामा रावलु गावडे बनाम सताबा गावडु गावड़े (मृत)एल.आर.एस. और अन्य के माध्यम से, [1997] 1 सुप्रीम कोर्ट केस 261 और एन.बालाकृष्णन बनाम एम. कृष्णमूर्ति [1998] 7एससीसी 123,

शकुंतला देवी जैन बनाम कुंतल कुमारी, [1969] 1एस.सी.आर 1006 और पश्चिम बंगाल राज्य बनाम प्रशासक हावड़ा नगर पालिका, (1972) 1एससीसी 366, संदर्भित)

सिविल अपीलीय क्षेत्राधिकार: 2002 की सिविल अपील संख्या 1704।

झारखंड उच्च न्यायालय, रांची के दिनांक 11.01.2001 के निर्णय एवं आदेश से, एल.पी.ए.सं. 1998 का 533 (आर).

अपीलकर्ताओं के लिए गौरव अग्रवाल और प्रशांत कुमार।

प्रतिवादी के लिए ए. शरण, सुजीत के. सिंह, चन्द्र शेखर आश्री (एन.पी) और एस.बी.उपाध्याय ।

न्यायालय का निर्णय बी.एन. अग्रवाल जे. द्वारा सुनाया गया, इज़ाज़त स्वीकृत।

इस अपील में दिया गया आदेश झारखंड उच्च न्यायालय की एक खंड न्याय पीठ द्वारा लेटर्स पेटेंट अपील में विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश को बरकरार रखते हुए पारित किया गया है, जिसके तहत लगभग 16 एकड़ भूमि के बंटवारा वाद में पारित जय पत्र के खिलाफ प्रतिवादियों द्वारा नियमित प्रथम

अपील दायर की गई थी। वादी का दावा यह मानते हुए निस्तारित कर दिया गया कि संपूर्ण अपील अक्षम हो गई है क्योंकि अपील के लंबित रहने के दौरान अपीलार्थी संख्या 2-काशीनाथ साव (प्रतिवादी संख्या 2), अपीलार्थी संख्या 3-बुचुआ देवी (प्रतिवादी संख्या 3), अपीलकर्ता संख्या 22-गुरु दयाल साव (प्रतिवादी संख्या 19) और अपीलकर्ता संख्या 41-उगनी देवी (प्रतिवादी संख्या 35) की मृत्यु हो गई और निर्धारित समय के भीतर उनके उत्तराधिकारियों और विधिक प्रतिनिधियों के प्रतिस्थापन के लिए कोई कदम उठाने की बात नहीं की गई। इसे समाप्त कर दिया गया और विलंब को माफ करने और विलंब को माफ करने के बाद उनके उत्तराधिकारियों के प्रतिस्थापन के लिए आवेदन को यह कहते हुए नामंजूर कर दिया गया कि विलंब को माफ करने या विलंब को अपास्त करने के लिए कोई पर्याप्त कारण नहीं दिखाया गया था।संक्षिप्त तथ्य यह है कि जब 1989 (आर) की पहली अपील संख्या 307 को सुनवाई के लिए सूचीबद्ध किया गया था, तो अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता ने एक पत्र लिखकर मामले को सूचीबद्ध करने के बारे में सूचित किया, जिसके बाद अपील में अपीलकर्ताओं में से एक ने 18 सितंबर, 1998 को आए, उनके अधिवक्ता से मिले और चर्चा के दौरान, यह पता चला कि अपीलकर्ता संख्या 2, 3, 22 और 41 पहले ही समाप्त हो चुके थे, जिस पर अधिवक्ता ने मुवक्किल को गांव जाने और उत्तराधिकारियों से वकालतनामा लाने का निर्देश दिया। और प्रतिस्थापन आवेदन दायर करने के लिए मृत व्यक्तियों के विधिक प्रतिनिधि से वकालतनामा प्राप्त करने के बाद, मुवक्किल 20 सितंबर, 1998 को वापस आया और उसके बाद 24 सितंबर, 1998 को प्रतिस्थापन आवेदन दायर किया गया, जिसमें अपीलकर्ता नंबर 2 का नाम हटाने की प्रार्थना की गई और यह टिप्पणी किया गया कि 10 अप्रैल को उसकी मृत्यु हो गई। 1997 में अपीलकर्ता संख्या 5, 9 और 10 को उनके उत्तराधिकारियों और विधिक प्रतिनिधियों के रूप में पीछे छोड़ दिया गया, जो पहले से ही अभिलेख में थे, इसके अलावा एक बेटी शीला देवी जिसके लिए मृत अपीलकर्ता के स्थान पर उसे अभिलेख पर लाने के लिए प्रार्थना की गई थी क्योंकि वह ठीक है निर्णय लिया गया कि ऐसी स्थिति में, छूटे हुए उत्तराधिकारियों को सीमा अवधि की परवाह किए बिना किसी भी समय अभिलेख पर लाया जा सकता है।

उस आवेदन में अपीलकर्ता क्रमांक 3, 22 और 41 के नामित उत्तराधिकारियों और विधिक प्रतिनिधियों के प्रतिस्थापन के लिए प्रार्थना पत्र दाखिल करने में हुई विलंबको माफ करने के बाद प्रार्थना की गई थी।

अपीलकर्ता संख्या 3 की मृत्यु 19 दिसंबर, 1997 को हुई, संख्या 22 की मृत्यु फरवरी, 1993 में हुई और संख्या 41 की मृत्यु वर्ष 1995 में हुई। उक्त अपील में, विभिन्न परिवारों, गांवों और थानापुलिस से संबंधित 41 अपीलकर्ता थे।

कुछ अपीलकर्ता जो प्रतिवादी का लड़ कर रहे थे, वे वादी और प्रतिवादी के संयुक्त परिवार के सदस्य थे जबकि अन्य स्थानांतरित व्यक्ति थे। चूंकि अपीलकर्ता नंबर 2 के कुछ वारिस पहले से ही अभिलेख पर थे,

उनकी अपील समाप्त नहीं हुई और एक छूटे हुए उत्तराधिकारी को अभिलेख पर लाने की प्रार्थना की गई, जिसके लिए कोई सीमा अवधि नहीं है। अब तक अपीलकर्ता सं.3 का संबंध है, प्रतिस्थापन के लिए आवेदन दाखिल करने में 130 दिनों काविलंब हुआ था। हालाँकि, अपीलकर्ता संख्या 22 के संबंध में, विलंब लगभग पाँच वर्ष थी और अपीलकर्ता संख्या 40 के संबंध में, विलंब लगभग तीन वर्ष थी, दोनों स्थानांतरित थे और उस गाँव और पुलिस थाना से भिन्न गाँवों के थे, जिसके सदस्य थे वादी एवं प्रतिवादी का संयुक्त परिवार निवास करता है। उच्च न्यायालय के समक्ष अपीलकर्ता देहाती और अशिक्षित ग्रामीण थे और निर्विवाद रूप से उनके अधिवक्ता की सलाह के बिना, बिना समय बर्बाद किए अत्यंत शीघ्रता से कदम उठाए गए।उत्तरदाताओं की ओर से उक्त अपील के बाद, प्रतिस्थापन के लिए उपरोक्त याचिका पर एक प्रतिउत्तर काशपथ-पत्र दायर किया गया था जिसमें यह नहीं कहा गया था कि विलंब दुर्भावनापूर्ण, विलंबित और/या जानबूझकर की गई थी। इसके अलावा, इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि अपीलकर्ता संख्या को छोड़कर सभी अपीलकर्ता देहाती ग्रामीण थे।

6. सभी अशिक्षित थे। तत्कालीन अस्तित्व में मौजूद पटना उच्च न्यायालय की रांची खंडपीठ के एक विद्वान एकल न्यायाधीश ने 18 नवंबर, 1998 के आदेश द्वारा अभिलेख से अपीलकर्ता संख्या 2 का नाम हटाने की निर्देश दिया, यह टिप्पणी करते हुए कि अपीलकर्ता संख्या 5, 9 और 10 पहले से ही उसके उत्तराधिकारी और विधिकप्रतिनिधियों के रूप में अभिलेख में थे और बेटी को पक्षकार बनाया जो अभिलेख में नहीं थी। जहां तक अपीलकर्ता क्रमांक 3, 22 और 41 के उत्तराधिकारियों के प्रतिस्थापन के लिए प्रार्थना का संबंध है, इसे नकार कर दिया गया क्योंकि यह अभिनिर्धारित किया गया कि कटौती को अपास्त करने के लिए आवेदन दाखिल करने में विलंब को माफ करने के लिए कोई पर्याप्त कारण नहीं दिखाया गया था। उक्त आदेश के खिलाफ, अपीलकर्ताओं ने झारखंड उच्च न्यायालय के समक्ष एक लेटर्स पेटेंट अपील दायर की, जो तब तक सृजित की गई थी, और उक्त अपील 11 जनवरी, 2001 को नामंजूर कर दी गई थी। इसलिए, यह अपील विशेष अनुमति द्वारा की गई है।

अपीलकर्ताओं की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री गौरव अग्रवाल, जो तथ्यों के साथ-साथविधिदोनों पर पूरी तरह से तैयार थे, ने मुद्दे पर सभी प्रासंगिक निर्णयों का पता लगाया और उन्हें निष्पक्षता के साथ रखते हुए, इस अपील के समर्थन में प्रस्तुत किया। चूंकि अपीलकर्ता, जो देहाती और अशिक्षित ग्रामीण थे, अलग-अलग परिवारों, अलग-अलग पुलिस थाने के अंतर्गत आने वाले अलग-अलग गांवों से थे और यह दिखाने के लिए किसी भी चीज़ के अभाव में कि विलंब दुर्भावनापूर्ण था, जानबूझकर की गई थी या कोई टाल-मटोल की रणनीति अपनाई गई थी, वही होना चाहिए था, अभिव्यक्ति 'पर्याप्त कारण' के रूप में अपास्त कर दिया गया है, ताकि एक उदार निर्माण प्राप्त हो, ताकि सारवान न्याय को आगे बढ़ाया जा सके जब किसी पक्ष के लिए कोई लापरवाही या निष्क्रियता या सद्भावना की कमी न हो। दूसरी ओर, उत्तरदाताओं की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री अमरेंद्र शरण ने अपनी सामान्य दृढ़ता के साथ प्रस्तुत किया कि उच्च न्यायालय का यह मानना बिल्कुल उचित था कि विलंब को माफ करने और उपशमन को अपास्त करने के लिए कोई पर्याप्त कारण नहीं बनाया गया था। और तदनुसार भारत का संविधान के अनुच्छेद

136 के तहत इस न्यायालय की विवेकाधीन शक्तियों के प्रयोग में आक्षेपित आदेश में किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।

परिसीमा अधिनियम, 1963 (बाद में 'अधिनियम' के रूप में संदर्भित) की धारा 5 के अर्थ में अभिव्यक्ति 'पर्याप्त कारण', सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 22 नियम 9 (इसके बाद "संहिता" के रूप में संदर्भित) के रूप में साथ ही इसी तरह के अन्य प्रावधान और उनके तहत शक्तियों के प्रयोग का क्षेत्र कई अवसरों पर इस न्यायालय के समक्ष विचार का विषय रहा है। पश्चिम बंगाल राज्य बनाम प्रशासक, हावड़ा नगर पालिका और अन्य, (1972) 1 सुप्रीम कोर्ट केस 366 के मामले में, अधिनियम की धारा 5 के अर्थ के भीतर 'पर्याप्त कारण' अभिव्यक्ति के दायरे पर विचार करते हुए, यह न्यायालय ने निर्धारित किया कि उक्त अभिव्यक्ति को एक उदार निर्माण प्राप्त होना चाहिए ताकि पर्याप्त न्याय को आगे बढ़ाया जा सके जब किसी पार्टी के लिए कोई लापरवाही या निष्क्रियता या सद्भावना की कमी न हो।सीतल प्रसाद सक्सेना (मृत) के मामले में एलआरएस द्वारा। बनाम भारत संघ और एक अन्य, ए.आई.आर 1985 सुप्रीम कोर्ट 1, न्यायालय एक ऐसे मामले से निपट रही थी जहां दूसरी अपील में, अपीलकर्ता की मृत्यु हो गई और उत्तराधिकारियों और विधिक प्रतिनिधियों द्वारा दो साल के बाद दायर विलंब की माफी और कटौती को अपास्त करने के बाद प्रतिस्थापन के लिए आवेदन नामंजूर कर दिया गया था। वह ज़मीन जो पर्याप्त नहीं है।कारण दिखाया गया और अपील को समाप्त कर दिया गया। जब मामला इस न्यायालय में लाया गया, तो अपील की अनुमति दी गई, उपशमन को अपास्त करने के लिए याचिका दायर करने में विलंब को माफ कर दिया गया, उपशमन को अपास्त कर दिया गया, प्रतिस्थापन के लिए प्रार्थना स्वीकार कर ली गई और उच्च न्यायालय को इसका निपटारा करने का निर्देश दिया गया।अपील गुण-दोष के आधार पर करता है और ऐसा करते समय, यह देखा गया कि एक बार जब कोई अपील उच्च न्यायालय में लंबित हो जाती है, तो उत्तराधिकारियों से उच्च न्यायालय के समक्ष अपील के पक्षों के निरंतर अस्तित्व पर निरंतर नजर रखने की उम्मीद नहीं की जाती है। यह स्थान वहां से बहुत दूर है जहां ग्रामीण इलाकों मेंपक्षकार गण हो सकते हैं।एक पारंपरिक ग्रामीण परिवार में रहने वाले पिता ने शायद अपने बेटे को उस मुकदमे के बारे में सूचित नहीं किया होगा जिसमें वह शामिल था और एक पक्ष था। आगे यह देखा गया कि न्यायालयों को याद रखना चाहिए कि "यह कई बार कहा गया है कि प्रक्रिया के नियम न्याय को आगे बढ़ाने के लिए बनाए गए हैं - और इसकी व्याख्या इसी प्रकार की जानी चाहिए न कि गलती करने वाले पक्षों को दंडित करने के लिए उन्हें दंडात्मक क़ानून बनाना चाहिए।" (महत्व जोड़ें)।

राम रावलु गावडे बनाम सताबा गावडु गावड़े (मृत) के मामले मेंएलआर के माध्यम से. और अन्य, (1997) 1 सुप्रीम कोर्ट केस 261, अपील के लंबित रहने के दौरान, एक पक्ष की मृत्यु हो गई। उस मामले में, उच्च न्यायालय ने उपशमन को अपास्त करने और उपशमन को अपास्त करने के लिए एक आवेदन करने में हुई विलंब को माफ करने से इनकार कर दिया था, लेकिन इस न्यायालय ने विलंब को माफ कर दिया, उपशमन को अपास्त कर दिया और अपीलीय न्यायालय को यह देखते हुए योग्यता के आधार पर अपील का निपटारा करने का निर्देश दिया कि विलंब को माफ करने से इनकार करने में उच्च न्यायालय सही नहीं था क्योंकि अपीलकर्ता एक अशिक्षित किसान था, इस तथ्य के कारण निर्धारित समय के भीतर आवश्यक कदम नहीं उठाए जा सके।

एन. बालकृष्णन बनाम एम. कृष्णमूर्ति, (1998) 7 सुप्रीम कोर्ट केस 123 के मामले में, एकपक्षीय जय पत्र को अपास्त करने के लिए आवेदन दायर करने में 883 दिनों कीविलंब हुई थी, जिसके लिए विलंब की माफी के लिए आवेदन दायर किया गया था। विचारण न्यायालय ने पाया कि विलंब को माफ करने के लिए पर्याप्त कारण बताए गए थे, विलंब को माफ कर दिया, लेकिन जब मामले को संहिता की धारा 115 के तहत एक पुनरीक्षण आवेदन में मद्रास उच्च न्यायालय में ले जाया गया, तो यह संप्रेक्षित किया गया कि आवेदन दाखिल करने में 883 दिनों केविलंब को उचित रूप से स्पष्ट नहीं किया गया था और यह अभिनिर्धारित किया गया था, कि विचारण न्यायालय द्वारा विलंब को माफ करना उचित नहीं था, जिसके परिणामस्वरूप उसके आदेश को उलट दिया गया था, जिसके बाद इस न्यायालय को सफलतापूर्वक स्थानांतरित कर दियागया था, जिसका विचार था कि उच्च न्यायालय था। विचारण न्यायालय द्वारा पारित आदेश में हस्तक्षेप करना उचित नहीं है जिससे एकपक्षीय जय पत्र को अपास्त करने के लिए आवेदन दाखिल करने में हुई विलंब को माफ कर दिया गया और तदनुसार उच्च न्यायालय के आदेश को अपास्त कर दिया गया। के.टी. थॉमस, जे. ने न्यायालय की ओर से बोलते हुए पैरा 8, 9 और 10 में इस प्रकार संप्रेक्षण करते हुए विधि को संक्षेप में निर्धारित किया:

"8. अपीलकर्ता का आचरण उसे एक गैर-जिम्मेदार वादी के रूप में दण्डित करने के लिए पूरी तरह से अपेक्षित नहीं है। वाद के बचाव करने में उसने जो किया वह एक वादी द्वारा मोटे तौर पर किए जाने वाले कार्यों से बहुत दूर नहीं था। बेशक, यह कहा जा सकता है कि वह मुकदमे की प्रगति की जांच करने के लिए थोड़े-थोड़े अंतराल पर अपने अधिवक्ता के पास जाकर अधिक सतर्क रहना चाहिए था, लेकिन इन दिनों जब हर कोई अपने जीवन के व्यवसाय में पूरी तरह से व्यस्त है, तो ऐसी अतिरिक्त सतर्कता अपनाने की आवश्यकता नहीं है। उसे एक ऐसे वादी के रूप में चित्रित किया गया जो अपनी जिम्मेदारियों से अनभिज्ञ था, और कठोर परिणामों के साथ उससे मुलाकात की।

9. यह स्वयंसिद्ध है कि विलंब को माफ करना न्यायालय के विवेक का मामला है। परिसीमा अधिनियम की धारा 5 यह नहीं कहती है कि इस तरह के विवेक का प्रयोग केवल तभी किया जा सकता है जब विलंब एक निश्चित सीमा के भीतर हो। विलंब की अवधि कोई मायने नहीं रखती, स्पष्टीकरण की स्वीकार्यता ही एकमात्र मानदंड है। कभी-कभी स्वीकार्य स्पष्टीकरण की कमी के कारण सबसे छोटी सीमा की विलंब को माफ नहीं किया जा सकता है, जबकि कुछ अन्य मामलों में, बहुत लंबी दूरी की विलंब को माफ किया जा सकता है क्योंकि उसका स्पष्टीकरण संतोषजनक है। एक बार जब न्यायालय स्पष्टीकरण को पर्याप्त मान लेती है, तो यह ई विवेक के सकारात्मक प्रयोग का परिणाम है और आम तौर पर वरिष्ठ न्यायालय को इस तरह के निष्कर्ष को परेशान नहीं करना चाहिए, पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार में तो बिल्कुल भी नहीं, जब तक कि विवेक का प्रयोग पूरी तरह से अस्थिर आधार पर या मनमाना या विकृत न हो, लेकिन यह अलग बात है कि पहली न्यायालय विलंब को माफ करने से इनकार कर देती है। ऐसे मामलों में, वरिष्ठ न्यायालय विलंब के लिए दर्शाए गए कारण पर नए सिरे से विचार करने के लिए स्वतंत्र होगा और निचली न्यायालय के निष्कर्ष से प्रभावित हुए बिना भी उच्च न्यायालय अपने निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए स्वतंत्र है।

न्यायालय का प्राथमिक कार्य पक्षकार गण के बीच विवाद का न्याय निर्णयन करना और सारवान न्याय को आगे बढ़ाना है। विभिन्न स्थितियों में न्यायालय का दरवाजा खटखटाने के लिए जो समय-सीमा नियत की गई

है, वह इसलिए नहीं है कि उस समय की समाप्ति पर एक बुरा कारण एक अच्छे कारण में बदल जाएगा।" [जोर दिया गया] न्यायालय ने पैराग्राफ 11, 12 और 13 में अग्रतर संप्रेक्षित किया जो चलाते हैं
इस प्रकार:-

"11. परिसीमा के नियम पार्टियों के अधिकारों को नष्ट करने के लिए नहीं हैं। वे यह देखने के लिए हैं कि पक्षकार गण टाल-मटोल की रणनीति का सहारा न लें, बल्कि तुरंत अपना उपाय तलाशें। विधिक उपाय प्रदान करने का उद्देश्य इससे होने वालेविधिक आघात के कारण नुकसान की मरम्मत करना है। सीमा काविधि इस तरह की विधिक आघात के निवारण के लिए एक जीवनकाल तय करता है। समय कीमती है और समय की बर्बादी के दौरान नए कारण सामने आएंगे, जिससे नए व्यक्तियों की आवश्यकता होगी न्यायालयो से संपर्क करके विधिक उपाय की तलाश करें। इसलिए प्रत्येक उपाय के लिए एक जीवनकाल तय किया जाना चाहिए, अंतहीन अवधि के लिए उपाय के प्रवर्तन अन्तहीन अनिश्चितता परिणामिक अराजकता की ओर बढ़ते है इस प्रकार, सीमा कीविधि सार्वजनिक नीति में निहित है, यह सूक्ति ‘‘राज्य का हित इस बात में है कि मुक़दमेबाजी का अंत हो’’ में संरक्षित है ।(यह सामान्य कल्याण के लिए है कि मुकदमेबाजी के लिए एक अवधि तय की जाए)। परिसीमा के नियम पक्षकारों के अधिकारों को नष्ट करने के लिए नहीं हैं। उनका उद्देश्य यह देखना है कि पक्षकार गण टालमटोल की रणनीति का सहारा न लें लेकिन तुरंत उनका उपाय खोजें। विचार यह है कि प्रत्येक विधिक उपाय को विधायी रूप से निर्धारित समयावधि तक जीवित रखा जाना चाहिए।

12. एक न्यायालयजानती है कि विलंब को माफ करने से इनकार करने पर वादी को अपना पक्ष रखने से रोका जा सकता है। ऐसा कोई उपधारणा नहीं है कि न्यायालय का दरवाजा खटखटाने में विलंब हमेशा जानबूझकर की जाती है। इस न्यायालय ने निर्धारित किया परिसीमा अधिनियम की धारा 5 के तहत "पर्याप्त कारण" शब्द को एक उदार निर्माण प्राप्त होना चाहिए ताकि सारवान न्याय मिल सके, शकुंतला देवी जैन बनाम कुंतल कुमारी, [1969] 1 एससीआर 1006 और डब्ल्यू.बी. राज्य बनाम प्रशासक, हावड़ा नगर पालिका, [1972] 1 एससीसी 366 मामले में।

13. यह याद रखना चाहिए कि विलंब के प्रत्येक मामले में, संबंधित वादी की ओर से कुछ चूक हो सकती है। केवल इतना ही उसकी याचिका को ठुकराने और उसके खिलाफ दरवाजा बंद करने के लिए पर्याप्त नहीं है। यदि स्पष्टीकरण में दुर्भावना की बू नहीं आती है या इसे टालने की दाँव-पेंच के हिस्से के रूप में सामने नहीं रखा गया है, तो न्यायालय को वादी के प्रति अत्यधिक विचार करना चाहिए। लेकिन जब यह सोचने का उचित आधार हो कि विलंब पक्षकार द्वारा जानबूझकर समय अभिप्राय: करने के लिए की गई थी, तो न्यायालय को स्पष्टीकरण को स्वीकार करने के विरुद्ध झुकना चाहिए। विलंब को माफ करते समय न्यायालय को विपरीत पक्ष को बिल्कुल नहीं भूलना चाहिए। यह ध्यान में रखना चाहिए कि वह एक हारा हुआ व्यक्ति है और उसने भी काफी बड़े मुकदमे का खर्च उठाया होगा"(महत्व जोड़ें) इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि अधिनियम की धारा 5 या संहिता के आदेश 22 नियम 9 या किसी अन्य समान प्रावधान के अर्थ के भीतर अभिव्यक्ति "पर्याप्त कारण" को एक उदार निर्माण प्राप्त होना चाहिए ताकि कोई लापरवाही या निष्क्रियता न होने पर सारवान न्याय मिल सके। या प्रामाणिकता की कमी किसी पक्षकार के लिए अत्यावश्यक

है। किसी विशेष मामले में दिया गया स्पष्टीकरण "पर्याप्त कारण" होगा या नहीं, यह प्रत्येक मामले के तथ्यों पर निर्भर करेगा। कदम उठाने में हुई विलंब के लिए दिए गए स्पष्टीकरण को स्वीकार या अस्वीकार करने का कोई सख्त सूत्र नहीं हो सकता। लेकिन एक बात स्पष्ट है कि न्यायालयो को दिखाए गए कारण में गलती खोजने की प्रवृत्ति के साथ आगे नहीं बढ़ना चाहिए और निपटाराअभियान के अतिरेक में एक लापरवाही से किये गए आदेश द्वारा याचिका को नामंजूर नहीं करना चाहिए। दिए गए स्पष्टीकरण को स्वीकार करना नियम होना चाहिए और अपवाद को अस्वीकार करना तब और भी अधिक होना चाहिए जब चूककर्ता पक्ष पर कोई लापरवाही या निष्क्रियता या सद्भावना की कमी का आरोप नहीं लगाया जा सकता है। दूसरी ओर, मामले पर विचार करते समय न्यायालयो को इस तथ्य को नजरअंदाज नहीं करना चाहिए कि निर्धारित समय के भीतर कदम नहीं उठाने से दूसरे पक्ष को एक मूल्यवान अधिकार प्राप्त हुआ है, जिसे नियमित तरीके से विलंब को माफ करके हल्के ढंग से पराजित नहीं किया जाना चाहिए। हालाँकि, मामले पर पांडित्यपूर्ण और उच्च तकनीकी दृष्टिकोण अपनाते हुए दिए गए स्पष्टीकरण को तब नामंजूर नहीं किया जाना चाहिए जब मामला बहुत बड़ा हो और/या मामले में तथ्य औरविधि के तर्कपूर्ण बिंदु शामिल हों, जिससे उस पक्ष को भारी नुकसान और अपूरणीय क्षति हो, जिसके विरुद्ध वाद या तो व्यतिक्रम रूप से या निष्क्रियता से समाप्त हो जाता है और ऐसे पक्ष के योग्यता के आधार पर विनिश्चय लेने के मूल्यवान अधिकार को नष्ट कर देता है। मामले पर विचार करते समय,न्यायालयों को किसी भी तरह से पक्षकारों पर दिए जाने वाले आदेश के परिणामी प्रभाव के बीच संतुलन बनाना होगा।

पूर्वगामी विवेचनो के मद्देनजर, हमारी स्पष्ट राय है, कि वर्तमान मामले के तथ्यों पर, उच्च न्यायालय की खंड न्याय पीठ को विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश को बरकरार रखना उचित नहीं था, जिसके तहत एफ ने विलंब को माफ करने और कटौती को अपास्त करने की प्रार्थना की थी। इनकार कर दिया गया था और तदनुसार उपशमन को अपास्त करने के लिए याचिका दायर करने में हुयेविलंब को अपास्त कर दिया गया है, उपशमन को अपास्त कर दिया गया है और प्रतिस्थापन के लिए प्रार्थना स्वीकार कर ली गई है।

परिणामस्वरूप, अपील को अनुज्ञात किया जाता है, उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेशों को अपास्त कर दिया जाता है, औरविधि के अनुसार योग्यता के आधार पर प्रथम अपील पर विनिश्चय करने की लिए वाद को विद्वान एकल न्यायाधीश के पास वापस भेज दिया जाता है। मामले की परिस्थितियों में, हम निर्देश देते हैं कि पक्षकार अपनी खर्च स्वयं वहन करेंगे।

टी.एन.ए.अपील को अनुज्ञात किया गया

<u>यह अनुवाद किरण शंकर मिश्रा, पैनल अनुवादक द्वारा किया गया है।</u>